IJFANS INTERNATIONAL JOURNAL OF FOOD AND NUTRITIONAL SCIENCES
ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 11, S.Iss 07, 2022

क्रान्तिकारियों का स्वतन्त्रता आंदोलन में विशेष योगदान एवं आए सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन

आरती ठाकुर
शोधार्थी
टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

डॉ0 सुधी
सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

परिचयात्मक शोध की भूमिका

स्वतन्त्रता के संघर्ष में उग्रदल ने और अधिक अतिवादी होकर देश में आतंक स्थापित करने वाली ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह का वातावरण निर्मित किया क्या संघर्षशील सशस्त्र प्रगति का मार्ग चुना। इस संघर्ष के पीछे निश्चय ही राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक कारण रहे है जिन्होंने मूल प्रेरक सत्य के रूप में स्वाधीनता संघर्ष को गति प्रदान किया। ब्रिटिश शासन को स्थान–स्थान भारतीय जनता के विरोध का सामना करना पड़ा था जो कार्य स्थानीय राजे–महाराजें नहीं कर सके थे, उन कार्यों को साधारण जनता ने किया था। प्रतिरोध करने वाली साधारण जनता में पर जमीदार, धर्म–परायण तथा समाज के अन्य वर्ग सम्मिलित थे जिनके हितों को ब्रिटिश शासन से आघात पहुँचाया था। वस्तुतः विदेशी प्रभुत्व के आर्थिक शोषण और प्रशासनिक दुर्बलता के जनमानस में तीव्र प्रतिक्रिया को जन्म दिया। परिणामस्वरूप, विदेशी शासन का भारत के विभिन्न भागों में अक्सर विरोध किया जाता रहा। जिसमें हिंसात्मक विरोध भी सम्मिलित था। उच्च शिक्षा प्राप्त करके लोग विश्वविद्यालयों से बाहर आने लगे। किन्तु ऐसे योग्य लोगों को अंग्रेजों की तुलना में कोई भी उच्च सरकारी पदे नहीं मिलते थे और ऐसे भारतीयों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। पदों के लिए आई.सी.एस. की परीक्षा केवल इंग्लैण्ड में आयोजित होती थी, जबकि दादाभाई नौरोजी का यह तर्क था कि यह परीक्षा भारत में भी साथ–साथ आयोजित की जानी चाहिए ताकि अधिक से अधिक भारतीय इसमें शामिल हो सके, किन्तु ब्रिटिश भारत सरकार ने इसे अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप देश में धीरे–धीरे राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। देश के नेता राष्ट्रीय विचारधारा और ब्रिटिश नियन्त्रण से मुक्त शिक्षा संस्थाओं के निर्माण पर कार्य करने लगे। राष्ट्रीय शिक्षा के निमित्त

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

महामना मालवीय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, हीरेन्द्रनाथ दत्त, विपिन चन्द्र पाल तथा अन्य बुद्धिजीवियों ने यह निश्चय किया कि राष्ट्रीय शिक्षा के निमित्त नए राष्ट्रीय विश्वविद्यालय और शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जाये। इस सम्बन्ध में छात्रों का आन्दोलन भी प्रारम्भ हो गया। जिसे दबाने के लिए सरकारी तन्त्र का उपयोग किया जाने लगा। इसी साल मार्च 1906 ई. में राष्ट्रीय शिक्षा के उत्थान के लिए 'राष्ट्रीय शिक्षा परिषद' की स्थापना की गई तथा इसके लिए अरविन्द और गुरूदास दास बनर्जी का आशीर्वाद प्राप्त किया गया। इस नए राष्ट्रीय विचारधारा के प्रमुख वक्ता विपिन चन्द्र पाल थे। ए.आर. देसाई ने लिखा है कि देश में शिक्षितों की संख्या बढ़ती गई और उनमें वर्तमान प्रशासन के विरुद्ध असन्तोष व्याप्त हो चला था।

शिक्षा पर नियन्त्रण स्थापित करने के साथ–साथ ब्रिटिश सरकार ने प्रेस और समाचार पत्रों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाया तथा उनकी स्वतन्त्र स्थिति पर कड़ी नजर रही अतः आपत्ति– जनक सामग्री के प्रकाशन और वितरण पर सरकार द्वारा पाबन्दियाँ लगाये जाने से शिक्षित जनता में सरकारी नीति के प्रति असन्तोष उत्पन्न हुआ, जिसने युद्धोन्मुखी आन्दोलन को प्रश्रय दिया। समय–समय पर अधिनियम पारित किये। सरकार ने ऐसे अनेक नियन्त्रण युक्त 1823 ई. के एक अधिनियम के अनुसार सरकार को यह अधिकार था कि वह आपत्ति जनक सामग्री के कारण किसी भी समाचार पत्र या पुस्तक को जब्त कर सकती थी। इस अधिनियम का राजाराम मोहन राय और ठाकुर द्वारिका नाथ ने विरोध किया था।

भारत में हुए धार्मिक और सामाजिक क्रांति ने जनता में नया प्राण फूंका और उन्हें राष्ट्रीयता, स्वाधीनता और आत्मसम्मान की नई दिशा प्रदान की। भारत में आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी जैसे धार्मिक और सामाजिक संगठनों ने जन–जन को राष्ट्रीय विचार और राष्ट्रोत्थान के प्रति जागरूक किया। राजाराम मोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, महागोविन्द रानाडे, विवेकानन्द जैसे सुधारकों ने अपने लोगों और भाषणों के माध्यम से हिन्दुओं की कुरीतियों, जाँति–पांति के भेदभाव और धार्मिक आडम्बरों को समाप्त करने की सलाह दी तथा आधुनिक शिक्षा और संस्कृति की ओर उन्मुख होने के लिए दलील दी। इससे देश की जनता में आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और

राष्ट्रवादिता का संचार हुआ उन्होंने यह सोचा कि वे स्वयं अपना प्रशासन चला सकते हैं तथा अपने देश में किसी विदेशी प्रभुता के रहने की कोई अपेक्षा नहीं करते। स्वामी दयानंद का यह घोषणा थी कि भारत भारतवासियों का है।

आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द ने अपने आध्यात्मिक विचारों और संदेशों से समस्त हिंदू जनता के मस्तिष्क को आंदोलित कर दिया तथा यह निर्भयतापूर्वक कहा कि अतीत के मिथ्यागौरव की बात करना व्यर्थ है। उन्होंने 1893 ई. में अमेरिका के शिकागो नामक नगर में आयोजित "विश्व धर्म सम्मेलन' में हिंदू धर्म पर अपना भाषण देकर सबको चकित कर दिया तथा अपने देश का मान बढ़ाया। उन्होंने अपने देश वासियों की आधुनिक सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में अपने देश के गौरव को बनाये रखने के लिए निर्देशित किया। कभी– कभी यह बहुत अधिक दुःखी होकर कहते थे कि वह समय कब आएगा जब हमारे देश के लोग निरन्तर अतीत में जीने की प्रवृत्ति से मुक्त होंगे। विदेशी सत्ता से मुक्ति प्राप्त करने के निमित्त वह सर्वदा सोचा करते थे। क्या कारण है कि हम तैतीस करोड़ लोगों पर पिछले एक हजार वर्ष से मुट्ठीभर विदेशी शासन करते आये हैं क्योंकि उन्हें अपने पर विश्वास था, हमें नहीं है।

परिचयात्मक शोध के सोपान

पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार ने 19वीं शताब्दी के पुनर्जागरण एवं सुधार आंदोलन का प्रारंभ किया। इसके कारण नयी जागरूकता ने जन्म लिया जिसने समाज एवं हिन्दू धर्म की शुद्धिकरण पर बल दिया तथा सामाजिक–धार्मिक पूर्व धारणाओं, अंधविश्वासो एवं जातीय अवरोधों को हटाने का लक्ष्य बनाया। इस समय जनता के प्रस्ताव में दो स्पष्ट प्रवृतियाँ थी, जो भारत को अन्धकार पूर्ण समय रूपी पराधीनता से मुक्ति दिलाना चाहती थी। उनमें से एक समूह विश्वबन्धुत्व की भावना से भरा तथा उदारवादी था जो दूसरे धर्मो एवं संस्कृतियों की अच्छाइयों को ग्रहण करने का पक्षधर था। दूसरा पक्ष भारतीय संस्कृति का प्रबल पक्षधर था जो भारतीय धर्म एवं संस्कृति को मूलतः स्थापित करना चाहता था। ऐसे दो आन्दोलन ब्रह्म समाज एवं आर्य समाज के रूप में उभरे। ब्रह्म समाज के प्रवर्तक राजाराम मोहनराय

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

थे। जिस समय पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर, तरूण बंगाली ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हो रहे थे उस समय राजाराम मोहनराय हिंदू धर्म के रक्षक के रूप में सामने आये। उन्होंने ईसाई मत को अस्वीकार कर दिया। महात्मा यशु के देवत्व को भी स्वीकार नहीं किया। परन्तु "यूरोपीय मानववाद" को अवश्य स्वीकार किया। 1828 ई. में उन्होने कलकत्ता में ब्रह्म समाज की नींव डाली।

परिचयात्मक शोध का महत्त्व

1857 ई. का विद्रोह भारतीय इतिहास की एक बहुत महत्वपूर्ण घटना थी और इसमें सन्देह नहीं है कि भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन की गिनती आधुनिक समाज के सबसे बड़े आन्दोलनों में की जाती है। इस आन्दोलन को कोई भी नाम मिले लेकिन यह सत्य प्रतीत होता है कि यह एक व्यापक जन–आन्दोलन था। इसे भारत का 'प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम' कहा जा सकता है। क्रान्ति के इस संग्राम को पाकिस्तानी इतिहासकारों ने 'आजादी की जंग' कहा है। 1857 तक अंग्रेज भारत में शक्तिशाली हो चुके थे। देशी राजे और जनता दोनों ही आतंकित थे। लेकिन यह सत्य है कि शासन सदैव आतंक से नहीं चलाया जा सकता था। हां यह हो सकता है कि कोई बुद्धिमान विदेशी शासक अपनी नीति कुशलता से किसी देश में अपना शासनकाल बढ़ा सकता है लेकिन आतंक के बल पर उसे स्थायित्व प्रदान नहीं कर सकता। 1857 ई. का विद्रोह भले ही सफल नहीं हुआ लेकिन उसके अनेक अनुभव प्राप्त हुए। तमाम आरोहो– अवरोहों के बावजूद क्रान्ति जब एक बार मन में बैठ जाती है तो परिणाम तक जाये बिना थम नहीं सकती। क्रान्ति की यात्रा धीमी पड़ सकती है, घटनाएं थम सकती हैं लेकिन भीतर की आग सुलगती रहती है। राख के ढेर में कहीं न कहीं एक चिंगारी जीवित रह जाती है। विदित है कि भारतवर्ष एक दिन में अंग्रेजों के अधीन नहीं हुआ था। लगभग सौ साल का षड्यंत्र, विश्वासघाती चाल, कूटनीति भरी दृष्टि के बाद अंग्रेजों का परचम लहराया है। 1857 ई. के पहले भी विद्रोह हुआ था। निजाम की फौज की तृतीय घुड़सवार सेना ने 21 सितम्बर, 1855 ई. को विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया। फौज के अध्यक्ष ब्रिगेडियर मैकेन्जी के

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

शरीर पर दस घाव आये और वे किसी तरह जान बचाकर भागे। विद्रोहियों का घर लूट लिया गया । इस विद्रोह के नेता भी मुसलमान थे।

परिचयात्मक शोध के उद्देश्य

1. सरकारी अधिकारीगण बहुधा जनता की भाषा से अनभिज्ञ रहा करते थे। उनमें दक्षता, उदारता तथा प्रवीणता की कमी होती थी। ऊँचे–ऊँचे पदों पर केवल अंग्रेजों की ही नियुक्ति की जाती थी जिसने भारतीयों में असंतोष पैदा किया।

2. शासक वर्ग के होने के कारण अंग्रेज भारतीयों को हेय दृष्टि से देखते थे तथा श्वेत वर्ग का होने के कारण अंग्रेज अपने को श्रेष्ठ मानते थे।

3. प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा चुनाव और प्रतिनिधित्व के नियम और निर्देश बनाये जाते थे, जो जनता के उद्देश्यों की पूर्ति के सर्वथा विपरीत हुआ करते थे।

परिचयात्मक शोध का निष्कर्ष

जनता का धन पानी की तरह बहाया जाता था। फलतः जनता में समकालीन राजनीतिक व्यवस्था के प्रति घोर विरोध की आग प्रज्जवलित होने लगी थी। लार्ड लिटन की नीतियों के कारण भी भारतीय जनता के मन में विक्षोभ और विद्रोह की भावना जागृत हुई। लिटन ने ऐसे समय में दिल्ली दरबार (1 जनवरी 1877 ई.) का आयोजन किया था, जब भारत के कुछ हिस्सों में दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था। यह स्थिति वैसी ही थी कि एक ओर तो रोम जल रहा था दूसरी ओर नीरो चैन की वंशी बजा रहा था। भारतीयों के मन में सरकार की भारतीय समस्याओं के प्रति उदासीनता कांटे की तरह चुभी।

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

सन्दर्भ सूची

1. डा0 एस.एल. नागोरी, भारत का मुक्ति संग्राम भाग– जयपुर 1997
2. मदन लाल कांत, स्वाधीनता संग्राम में क्रान्तिकारी साहित्य का इतिहास, भाग–1, नई दिल्ली, 2006
3. कुलदीप नैय्यर, शहीद भगत सिंह क्रांति के प्रयोग, संवाद प्रकाशन, मेरठ
4. डा. सत्या एम. राय, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, दिल्ली, 2004
5. श्रीयुत रामशरण विद्यार्थी, कामागाटामारू की समुद्रयात्रा, क्रांतिकारी प्रकाशन, मिर्जापुर, 1970